International Journal of Applied Research 2015; 1(2): 186-188

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(2): 186-188
www.allresearchjournal.com
Received: 20-11-2014
Accepted: 23-12-2014

डॉ0 उपेन्द्र साहु
एकहरि, लदनियाँ, मधुबनी,
बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 उपेन्द्र साहु
एकहरि, लदनियाँ, मधुबनी,
बिहार, भारत

संस्कृत साहित्य में वर्णित समाज का स्वरूप

डॉ0 उपेन्द्र साहु

शोधसार

संस्कृत साहित्य में वर्णित व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र के आत्मिक सद्गुणों का वह आलोक, जिससे सबका मङ्गलमय जीवनपथ प्रशस्त होता है, अन्तस् की उस लोकव्यापिनी दृष्टि को सामाजिक समरसता के नाम से जाना जा सकता है।

भारतीय संस्कृति के उदय से ही वेदों की ऋचाओं का दर्शन करने वाले ऋषियों की जीवन विधायिनी दृष्टि समाज के बाह्य एवं आन्तरिक सत्कर्म साधक के रूप में सजग रही है। उनकी व्यावहारिक तथ्यों की अनुभूतिपरक विचारशैली सर्वथा सार्वभौमिक है और आचारनिष्ठा सार्वजनीन। उनका अमृतसङ्कल्प विश्वव्यापी है और अध्यात्मभाव लोककल्याणकारक। ऋषि के अमृतानुभव की रसधार सर्वहितकारी है–वायु हमारे लिए शान्तिप्रद होकर बहे, सूर्य शक्तिविधायक होकर तपे, अत्यन्त उच्चध्वनि से गरजता हुआ मेघ शान्तिविधायक होकर सर्वत्र वर्षा करे–

शं नो वातः पवतां शं नः तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽभि वर्षतु।। [1]

विश्व में समरसता की प्रतिष्ठा के लिए तपः शील ऋषियों की कल्पना में सदा सहिष्णुता, सौमनस्य तथा सहयोग से व्यवस्थित विश्व आभासित हुआ है जिसमें सब सुखी हों, सब स्वस्थ हो, सब कल्याण सम्पन्न हो, किसी को कोई कष्ट न हो–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।। [2]

वैदिक ऋषि [3] के अनुसंधित्सु मन ने प्रकृति की अनेकता में एकत्व का दर्शन किया, विभिन्नता में अभिन्नता को आभासित किया। अन्ततः वे इस अन्विति को प्राप्त हुए कि प्रकृति के नाना रूपों में एक ही शक्ति है जो सृष्टि की गति को नियंत्रित करती है, उसी एक अमृततत्व की उपलब्धि से आत्मतत्व की अनुभूति सार्थक हो जाती है और मानव सृष्टि के कण–कण में आत्मतत्त्व का दर्शन कर लेता है– आत्मवत् सर्वेभूषेषु, [4]। अद्वैतवाद की इस आधार–शिला पर साम्यवाद की प्रतिष्ठापना करने वाले वैदिक ऋषि की दृष्टि में सभी प्राणी उस परमतत्त्व के अमृत अंश है, उस परमतत्त्व को जानकर ही हे अमृत पुत्र! मृत्यु के भय से तुम मुक्त हो सकते हो, दूसरा कोई रास्ता नहीं है–

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।
आ ते द्यामानि दिव्यानि तस्थुः। [5]

भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि पुरूष श्री कृष्ण ने गीता में कहा है– चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः [6] एकाधिक वर्गो में विभक्त समाज में परस्पर मन और विचारों की विशालता, सबके साथ सहभागिता, सबके जीवन में सम्मिलित होना और सबको अपने जीवन में सम्मिलित सम्पत्ति का अपने ही क्षुद्र स्वार्थ के लिए, अपनी ही सुख–सुविधा के लिए उपयोग अक्षम्य है। त्याग की वेदी पर स्वार्थ का परित्याग होना ही चाहिए–

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
भुञ्जते ते त्वधं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्। [7]

प्राचीन भारत के राजागण राज्य के उच्चतम पद पर प्रतिष्ठित होते हुए भी प्रजा के प्रतिनिधिभूत राष्ट्रनायक थे अतः उनका व्यक्तिगत स्वार्थ गौण था और प्रजाहितचिन्तन प्रधान–स्वसुखरिनभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः। [8] जो अपने लिए अनुकूल है, वही दूसरे के लिए भी सुखकर है, जो अपने लिए कष्टकर है, प्रतिकूल है, वह दूसरे के लिए भी दुःख का कारण बनेगा। जीवन के माधुर्य की आपूर्त्ति इसी सन्देश में सन्निहित है– आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत। [9]
भारतीय संस्कृति में विलय की अभूतपूर्व सामर्थ्य है। समग्रः धर्म, समस्त जातियाँ, सम्पूर्ण सम्प्रदाय अपनी–अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखते हुए इसमें विलीन हो जाते है। यहाँ यह समस्या नहीं उठती कि नवागन्तुक के लिए समाज में कहाँ स्थान निर्धारित किया जाय, स्थान स्वयं बन जाता है और नवागन्तुक अपनी पृथकताओं को बटोर कर उसमें समा जाता है। एक लहर उठती है। और महासमुद्र शान्त हो जाता है मानो किसी का कहीं कोई अलग अस्तित्व था ही नहीं। उदारमना पुराणों ने उद्घोष किया है–

श्रृणुते सर्वधर्माश्च सर्वान् देवान् नमस्यति।
अनसूयुर्जितक्रोधस्तस्य तुष्यति केशवः।। [10]

ईश्वर उससे सन्तुष्ट होता है जो सब धर्मो के उपदेश को सुनता है, सभी देवताओं की उपासना करता है, जो ईर्ष्या से मुक्त है और जो क्रोध को जीत चुका है। सम्पूर्ण राष्ट्र को एक महासमाज के ढाँचे में ढालने का यह प्रयास अद्भूत है। इसी प्रयास के सम्मान में याज्ञवल्क्यादि स्मृतिकारों ने यह व्यवस्था दो थी कि विजित राजा पराजित देश के आचार व्यवहार एवं कुलस्थिति का सम्मान करें। [11]
भारतीय संस्कृति द्वारा प्रतिपादित धर्म के विकास के मूल में भी समरसता का यही बीज आरोपित है। समग्र भारत ने महावीर की शिक्षाओं में विश्वास व्यक्त किया और तथागत को विष्णु का अवतार घोषित किया–

केशव धृत बुद्ध शरीर, जय जगदीश हरे। [12]

आज भारतीय समाज में जिन देवताओं, अनुष्ठानों, तीर्थो और उत्सवों की मान्यता है, जिन रीतियों, आचारों, आस्थाओं और परम्पराओं का प्रचलन है, वे आर्य और आर्येत्तर संस्कृति के मिश्रण का परिणाम है। सभी दिशाओं में बसने वाले भारतीयों की संस्कृति आपाततः भिन्न प्रतीत होने पर भी आन्तरिक रूप से सांस्कृतिक एकता सुरक्षित है। उन सभी का धर्म एक है, भाषा मूल एक है, संस्कार एक है, संस्कृति एक है, भाव एक है, विचार एक है, मानसिकता एक है, यहाँ तक कि जीवन के विषय में दृष्टिकोण भी एक है–

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।। [13]

सत्य तो यह है कि जब संस्कृतियों की विशाल धाराएं किसी एक संङ्गम पर मिलती हैं, जब समाज एक परिवर्तन से गुजरता है, तब समरसता का संदेश शाश्वत होता है तब कोई क्रान्तिद्रष्टा कवि जातीय महाकाव्य की रचना कर उस क्रान्ति को अमर कर देता है। रामायण ऐसी ही समन्वयप्रधान किन्तु लोकपावनी क्रान्ति की संवाहक है और वाल्मीकि उसके प्रख्यापक, महाकाव्य के गुणों से सर्वथा मण्डित होने पर भी रामायण काव्य नहीं राष्ट्र की अन्तरात्मा का, सत्य–प्रकाश और एकता की दिव्य शाक्तियों का इतिहास है जो आदर्श के स्वरों द्वारा भारतीय जीवन को स्नेह, सौहार्द, समन्वयता और सामरस्य से अभिसिञ्चित करता है। दाशरथि राम सचमुच पृथ्वी पर जन्मे थे। त्रेता युग के विष्णु के इसी राम अवतार से धरती कृतकत्य हुई थी इसी राम रूप अवतार ने अपने अलौकिक कृत्यों से भारतीय जीवन को धन्य किया था और वाल्मीकि को रामायण कहाकाव्य की रचना के लिए आदर्श चरितनायक मिल गया था।
भारत के मानस को एकसूत्रता में बाँधने का कवि वाल्मीकि का यह प्रयास अद्भुत है जिसमें राम की जीवन चेतना को मूलसत्य की ऐसी अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत किया गया है कि वे भारतीय आस्था और सम्मान के स्थायी केन्द्र बन गए है। राम के प्रति जन–जन के मन में तब भी आदर का भाव था जब महावीर और बुद्ध अपने शान्त उपदेशों से भारत का हृदय परिवर्तन कर रहे थे। वैदिक संस्कृति को निरर्थक सिद्ध कर हिन्दूधर्म के एक नये संस्करण की चाकचिक्यता से जनमानस को प्रलोभित कर रहे थे। हिन्दू धर्म के भीतर से जैन और बौद्ध धर्म के रूप में उठा यह बवण्डर स्वतः शान्त हो गया क्योंकि इन धर्मो के साहित्य ने भारत के धार्मिक साहित्य में सामञ्जस्य स्थापित कर लिया तदनुसार जातकों ने स्वीकार किया कि बुद्ध

अपने पूर्वजन्मों में एक बार राम रूप मे अवतरित हुए थे और जैन ग्रन्थों ने लिखा कि तिरसठ तीर्थकारों में राम और लक्षण भी उल्लेख्य है।

संदर्भ :

1. अथर्ववेद 7.69.1
2. अज्ञात
3. कठोपनिषद् 3—9—12
4. पञ्चन्त्र
5. यजुर्वेद
6. श्रीमदभगवद्गीता 4.13
7. श्रीमदभगवद्गीता 3.13
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.7
9. महाभारत
10. विष्णुधर्मोत्तर पुराण 1.58
11. याज्ञवल्क्यस्मृति 1.342—343
12. गीतगोविन्द
13. ऋग्वेद 10.191.2